॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

शुक्लयजुर्वेदीय

मुक्तिकोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्रथम अध्याय

श्रीराम और हनुमान्‌का संवाद; वेदान्तकी महिमा; मुक्तिके भेद; १०८ उपनिषदोंकी नामावली तथा वेदोंके अनुसार विभाग; उपनिषदोंके पाठका माहात्म्य तथा उनके श्रवणके अधिकारी

ॐ श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरीमें रमणीय रत्नमण्डपके बीच सीता, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न आदिसे समन्वित होकर रत्नसिंहासनपर आसीन थे। सनक-सनन्दनादि मुनिगण, वसिष्ठ आदि गुरुजन तथा शुकादि अन्यान्य भागवत रात-दिन उनका स्तवन करते रहते थे। सर्वान्तर्यामी एवं निर्विकार श्रीरामचन्द्रजी एक समय अपने स्वरूप-ध्यानमें रत होकर समाधिस्थ हो रहे थे। उनकी समाधि टूटनेपर श्रीहनुमान्‌जीने भक्तिपूर्वक सुननेकी इच्छासे स्तवन करते हुए श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा—'श्रीरामजी! आप परमात्मा हैं, सत्-चित् और आनन्दस्वरूप परब्रह्मके अवतार हैं। रघुवर! इस अवसरपर मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। श्रीरामजी! मैं आपके यथार्थ स्वरूपको जानना चाहता हूँ, जो मुक्ति प्रदान करनेवाला है, जिससे मैं अनायास—सहजमें ही इस संसार-बन्धनसे छूट जाऊँ। रामजी! कृपा करके मुझसे उसका वर्णन कीजिये, जिससे मैं मुक्त हो जाऊँ'॥ १—६॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'महाबलशाली हनुमान्! तुमने अच्छा प्रश्न किया। मैं तत्त्वकी बात कहता हूँ, सुनो। मेरा स्वरूप वेदान्तमें अच्छी प्रकारसे वर्णित है, अतएव तुम वेदान्तशास्त्रका आश्रय लो।' श्रीहनूमान्‌जीने पूछा—'रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामजी! वेदान्त किसे कहते हैं और उसकी स्थिति कहाँ है—मुझे बतलायें।' श्रीरामजीने कहा—'हनूमान्‌जी! सुनो, मैं तुम्हें अविलम्ब वेदान्तकी स्थिति बतलाऊँगा। मुझ विष्णुके निःश्वाससे सुविस्तृत चारों वेद उत्पन्न हुए। तिलोंमें तेलकी भाँति वेदोंमें वेदान्त सुप्रतिष्ठित है।' श्रीहनूमान्‌जीने पूछा—'श्रीरामजी! वेद कितने प्रकारके हैं और राघव! उनकी शाखाएँ कितनी हैं तथा उनमें उपनिषद् कौन-कौन-से हैं, यह कृपा करके तत्त्वतः—यथार्थरूपसे समझाइये'॥ ७—१०॥

श्रीरामजीने कहा—वेद चार कहे गये हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। उन चारोंकी अनेकों शाखाएँ हैं और उन शाखाओंके उपनिषद् भी अनेकों हैं। ऋग्वेदकी इक्कीस शाखाएँ हैं। पवनतनय! यजुर्वेदकी एक सौ नौ शाखाएँ हैं और शत्रुतापन! सामवेदसे सहस्र शाखाएँ निकली हैं। कपीश्वर! अथर्ववेदकी शाखाओंके पचास भेद हैं। एक-एक शाखाकी एक-एक उपनिषद् मानी गयी है। जो व्यक्ति उन उपनिषदोंके एक भी मन्त्रका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह व्यक्ति मुनियोंके लिये भी दुर्लभ मेरी सायुज्य-मुक्ति प्राप्त करता है॥ ११—१४॥

हनूमान्‌जीने कहा—श्रीरामजी! कोई-कोई मुनिश्रेष्ठ कहते हैं कि मुक्ति एक ही प्रकारकी होती है और कुछ मुनिगण कहते हैं कि तुम्हारा नामस्मरण करनेसे मुक्ति होती है तथा काशीमें मरनेवालेको भगवान् शंकर तारक-मन्त्रका उपदेश देते हैं, जिससे प्राणी मुक्त हो जाता है। दूसरे मुनियोंका कथन है कि सांख्ययोगसे मुक्ति होती है और कुछ मुनियोंके मतसे भक्तियोग ही मुक्तिका कारण है। अन्य महर्षियोंके कथनानुसार वेदान्त-वाक्योंके अर्थका विचार करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है और किसी-किसीके मतमें सालोक्य, सायुज्य, सामीप्य और कैवल्यरूपसे मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है'॥ १५-१६॥

श्रीरामने कहा—'कपिवर! कैवल्य-मुक्ति तो एक ही प्रकारकी है, वह परमार्थरूप है। इसके अतिरिक्त

भक्तिपूर्वक मेरा नाम-स्मरण करते रहनेसे दुराचारमें लगा हुआ मनुष्य भी सालोक्यमुक्तिको प्राप्त होता है, वहाँसे वह अन्य लोकोंमें नहीं जाता। जिसकी काशीक्षेत्रमें ब्रह्मनाल नामक प्रदेशके अन्तर्गत मृत्यु होती है, वह मेरे तारक-मन्त्रको प्राप्त करता है और उसे वह मुक्ति मिलती है, जिससे उसे आवागमनमें नहीं आना पड़ता। काशीक्षेत्रमें चाहे कहीं भी मृत्यु हो, शङ्करजी प्राणीके दाहिने कानमें मेरे तारक-मन्त्रका उपदेश करते हैं, जिससे उसके सारे पापोंके समूह झड़ जाते हैं तथा वह मेरे सारूप्यको—समान रूपको प्राप्त हो जाता है। वही सालोक्य-सारूप्य मुक्ति कहलाती है। जो द्विज सदाचार-रत होकर नित्य एकमात्र मेरा ध्यान करता है और मुझे सर्वात्मस्वरूप चिन्तन करता है, वह मेरे सामीप्यको प्राप्त होता है—सदा मेरे समीप निवास करता है। वही सालोक्य-सारूप्य-सामीप्य मुक्ति कहलाती है। जब गुरुके द्वारा उपदिष्ट मार्गसे मेरे अव्यय, निर्विकार स्वरूपका ध्यान करता है, तब वह द्विज भ्रमरकीटके समान सम्यक्‌रूपसे मेरे सायुज्यको प्राप्त करता है। वही कल्याणमयी, ब्रह्मानन्दको प्रदान करनेवाली सायुज्य-मुक्ति है। मेरी उपासनासे जो चार प्रकारकी मुक्तियाँ होती हैं—सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य एवं कैवल्य, उनमें यह कैवल्यमुक्ति किस उपायका अवलम्बन करनेसे सिद्ध होती है, सो सुनो'॥ १७—२३॥

अकेली माण्डूक्योपनिषद् मुमुक्षुजनोंको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थ है। यदि उससे भी ज्ञानमें परिपक्वता न आये तो दस उपनिषदोंका पाठ करो। उससे ज्ञान प्राप्त करके शीघ्र ही मुझे अद्वैत धाम अर्थात् तेजके रूपमें प्राप्त करोगे। अञ्जनीकुमार! यदि उससे भी ज्ञानकी दृढ़ता न हो तो बत्तीस उपनिषदोंका सम्यक्‌रूपसे अभ्यास करके संसारसे निवृत्त हो जाओ। यदि विदेहमुक्त—शरीर छोड़नेके बाद मुक्त होना चाहते हो तो एक सौ आठ उपनिषदोंका पाठ करो। उन उपनिषदोंके नाम, क्रम और शान्तिपाठ यथार्थतः कहता हूँ; सुनो। ईश,[१] केन,[२] कठ,[३] प्रश्न,[४] मुण्डक,[५] माण्डूक्य,[६] तैत्तिरीय,[७] ऐतरेय,[८] छान्दोग्य,[९] बृहदारण्यक,[१०] ब्रह्म,[११] कैवल्य,[१२] जाबाल,[१३] श्वेताश्वतर,[१४] हंस,[१५] आरुणिक,[१६] गर्भ,[१७] नारायण,[१८] परमहंस,[१९] अमृतबिन्दु,[२०] अमृतनाद,[२१] अथर्वशिरस्,[२२] अथर्वशिखा,[२३] मैत्रायणी,[२४] कौषीतकिब्राह्मण,[२५] बृहज्जाबाल,[२६] नृसिंह-तापनीय,[२७] कालाग्निरुद्र,[२८] मैत्रेयी,[२९] सुबाल,[३०] क्षुरिका,[३१] मन्त्रिका,[३२] सर्वसार,[३३] निरालम्ब,[३४] शुकरहस्य,[३५] वज्रसूचिका,[३६] तेजोबिन्दु,[३७] नादबिन्दु,[३८] ध्यानबिन्दु,[३९] ब्रह्मविद्या,[४०] योगतत्त्व,[४१] आत्मप्रबोध,[४२] नारदपरिव्राजक,[४३] त्रिशिखिब्राह्मण,[४४] सीता,[४५] योगचूडामणि,[४६] निर्वाण,[४७] मण्डलब्राह्मण,[४८] दक्षिणामूर्ति,[४९] शरभ,[५०] स्कन्द,[५१] त्रिपाद्विभूतिमहानारायण,[५२] अद्वयतारक,[५३] रामरहस्य,[५४] रामतापनीय,[५५] वासुदेव,[५६] मुद्गल,[५७] शाण्डिल्य,[५८] पैङ्गल,[५९] भिक्षुक,[६०] महत्,[६१] शारीरक,[६२] योगशिखा,[६३] तुरीयातीत,[६४] संन्यास,[६५] परमहंसपरिव्राजक,[६६] अक्षमाला,[६७] अव्यक्त,[६८] एकाक्षर,[६९] अन्नपूर्णा,[७०] सूर्य,[७१] अक्षि,[७२] अध्यात्म,[७३] कुण्डिका,[७४] सावित्री,[७५] आत्मा,[७६] पाशुपत,[७७] परब्रह्म,[७८] अवधूत,[७९] त्रिपुरातापनीय,[८०] देवी,[८१] त्रिपुरा,[८२] कठरुद्र,[८३] भावना,[८४] रुद्रहृदय,[८५] योगकुण्डली,[८६] भस्मजाबाल,[८७] रुद्राक्षजाबाल,[८८] गणपति,[८९] जाबालदर्शन,[९०] तारसार,[९१] महावाक्य,[९२] पञ्चब्रह्म,[९३] प्राणाग्निहोत्र,[९४] गोपालतापनीय,[९५] कृष्ण,[९६] याज्ञवल्क्य,[९७] वराह,[९८] शाट्यायनीय,[९९] हयग्रीव,[१००] दत्तात्रेय,[१०१] गरुड,[१०२] कलिसंतरण,[१०३] जाबालि,[१०४] सौभाग्यलक्ष्मी,[१०५] सरस्वतीरहस्य,[१०६] बह्वृच[१०७] और मुक्तिकोपनिषद्[१०८] ॥ २४—३६॥

ये एक सौ आठ उपनिषदें मनुष्यके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक—तीनों तापोंका नाश करती हैं। इनके पाठ और स्वाध्यायसे ज्ञान और वैराग्यकी प्राप्ति होती है तथा लोक-वासना, शास्त्र-वासना एवं देह-वासनारूप त्रिविध वासनाओंका नाश होता है। पूर्व और पश्चात् विहित प्रत्येक उपनिषद्‌की शान्तिका पाठ करते हुए, वेदविद्या-विशारद, व्रतपरायण, स्नान किये हुए, स्वयं आत्मतत्त्वोपदेष्टाके मुखसे—ग्रहण अर्थात् श्रवण करके जो द्विजश्रेष्ठ अष्टोत्तरशत उपनिषदोंका पाठ करते हैं, वे जबतक प्रारब्धकर्मोंका नाश नहीं हो जाता, तबतक जीवन्मुक्त बने रहते हैं। उसके पश्चात् कालक्रमसे जब प्रारब्धका नाश हो जाता है, तब वे मेरी विदेह-मुक्तिको प्राप्त करते हैं। समस्त उपनिषदोंके बीच एक सौ आठ उपनिषद् सारस्वरूप हैं। इनका एक बार भी श्रवण करनेसे सारे पापोंके समूह नष्ट हो जाते हैं। पवनकुमार! तुम मेरे शिष्य हो, अतएव मैंने तुम्हारे लिये इस शास्त्रका वर्णन किया है। मेरे द्वारा वर्णित यह अष्टोत्तरशत उपनिषद्‌रूप शास्त्र अत्यन्त गोपनीय है। ज्ञानसे, अज्ञानसे अथवा प्रसङ्गवश भी इनका पाठ करनेसे संसाररूप बन्धनसे मुक्ति मिल जाती है। जो तुमसे राज्य अथवा धन माँगे, उसे उसकी कामना-पूर्तिके लिये राज्य अथवा धन दे सकते हो; परंतु इन एक सौ आठ उपनिषदोंको जिस-किसीको देना ठीक नहीं। निश्चयपूर्वक जो नास्तिक हैं, कृतघ्न हैं, दुराचारी हैं, मेरी भक्तिसे मुँह मोड़े हुए हैं तथा शास्त्ररूप गड्ढोंमें गिरकर मोहित

हो रहे हैं अर्थात् जो केवल शास्त्र-चर्चामें ही लगे हुए हैं, उन्हें तो कभी नहीं देना चाहिये। मारुति! सेवापरायण शिष्यको, अनुकूल (आज्ञाकारी) पुत्रको अथवा जो कोई भी मेरा भक्त हो, अच्छे कुलमें उत्पन्न हो, सुशील और सद्बुद्धिसम्पन्न हो, उसे भलीभाँति परीक्षा करके अष्टोत्तरशत उपनिषदोंको प्रदान करना चाहिये। इस प्रकारका जो व्यक्ति इन उपनिषदोंको पढ़ता या सुनता है, वह मुझको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥ ३७—४७॥

यही बात ऋचामें भी कही गयी है। कहते हैं, वेद-विद्या—उपनिषद् ब्राह्मणके पास गयी और बोली—'मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी निधि हूँ। याद रहे—मुझे निन्दकों, मिथ्याचारी और दुष्ट प्रकृतिवालोंको मत सुनाना, कभी मत सुनाना; तभी मैं वीर्यवती—सामर्थ्ययुक्त अथवा सफल होऊँगी।' जिसे गुरु श्रुतशील (शास्त्राभ्यासी), प्रमादरहित, मेधावी और ब्रह्मचर्यसे युक्त समझे; उसीके समीप आनेपर उसकी सम्यक् परीक्षा करके इस आत्मविषयक वैष्णवी विद्याको प्रदान करे॥ ४८-४९॥

पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीसे श्रीहनूमान्‌जीने पूछा—भगवन्! ऋग्वेदादिके अनुसार उपनिषदोंका अलग-अलग विभाग करके शान्ति-मन्त्रोंको मुझपर अनुग्रह करके कहिये॥ ५०॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—ऐतरेय,[१] कौषीतकिब्राह्मण,[२] नादबिन्दु,[३] आत्मप्रबोध,[४] निर्वाण,[५] मुद्गल,[६] अक्षमालिका,[७] त्रिपुरा,[८] सौभाग्यलक्ष्मी[९] और बह्वृच[१०]—ये दस उपनिषद् ऋग्वेदीय हैं और इनका शान्तिमन्त्र है '**वाङ् मे मनसि**' इत्यादि॥ ५१॥

ईशावास्य,[१] बृहदारण्यक,[२] जाबाल,[३] हंस,[४] परमहंस,[५] सुबाल,[६] मन्त्रिका,[७] निरालम्ब,[८] त्रिशिखिब्राह्मण,[९] मण्डल-ब्राह्मण,[१०] अद्वयतारक,[११] पैङ्गल,[१२] भिक्षुक,[१३] तुरीयातीत,[१४] अध्यात्म,[१५] तारसार,[१६] याज्ञवल्क्य,[१७] शाट्यायनी[१८] और मुक्तिका[१९]—ये शुक्लयजुर्वेदके उन्नीस उपनिषद् हैं; इनका शान्तिमन्त्र है '**पूर्णमदः पूर्णमिदम्**' इत्यादि॥ ५२॥

कठवल्ली,[१] तैत्तिरीय,[२] ब्रह्म,[३] कैवल्य,[४] श्वेताश्वतर,[५] गर्भ,[६] नारायण,[७] अमृतबिन्दु,[८] अमृतनाद,[९] कालाग्निरुद्र,[१०] क्षुरिका,[११] सर्वसार,[१२] शुकरहस्य,[१३] तेजोबिन्दु,[१४] ध्यान-बिन्दु,[१५] ब्रह्मविद्या,[१६] योगतत्त्व,[१७] दक्षिणामूर्ति,[१८] स्कन्द,[१९] शारीरक,[२०] योगशिखा,[२१] एकाक्षर,[२२] अक्षि,[२३] अवधूत,[२४] कठरुद्र,[२५] रुद्रहृदय,[२६] योगकुण्डली,[२७] पञ्चब्रह्म,[२८] प्राणाग्नि-होत्र,[२९] वराह,[३०] कलिसंतरण[३१] और सरस्वतीरहस्य[३२]—ये कृष्णयजुर्वेदके बत्तीस उपनिषद् हैं; इनका शान्तिमन्त्र है—'**सह नाववतु सह नौ भुनक्तु**' इत्यादि॥ ५३॥

केन,[१] छान्दोग्य,[२] आरुणिक,[३] मैत्रायणी,[४] मैत्रेयी,[५] वज्रसूचिका,[६] योगचूडामणि,[७] वासुदेव,[८] महत्,[९] संन्यास,[१०] अव्यक्त,[११] कुण्डिका,[१२] सावित्री,[१३] रुद्राक्षजाबाल,[१४] जाबालदर्शन[१५] और जाबालि[१६]—ये सामवेदके सोलह उपनिषद् हैं; इनका शान्तिमन्त्र है '**आप्यायन्तु ममाङ्गानि०**' इत्यादि॥ ५४॥

प्रश्न,[१] मुण्डक,[२] माण्डूक्य,[३] अथर्वशिरस्,[४] अथर्व-शिखा,[५] बृहज्जाबाल,[६] नृसिंहतापनीय,[७] नारदपरिव्राजक,[८] सीता,[९] शरभ,[१०] त्रिपाद्विभूतिमहानारायण,[११] रामरहस्य,[१२] रामतापनीय,[१३] शाण्डिल्य,[१४] परमहंसपरिव्राजक,[१५] अन्नपूर्णा,[१६] सूर्य,[१७] आत्मा,[१८] पाशुपत,[१९] परब्रह्म,[२०] त्रिपुरातापनीय,[२१] देवी,[२२] भावना,[२३] भस्मजाबाल,[२४] गणपति,[२५] महावाक्य,[२६] गोपालतापनीय,[२७] कृष्ण,[२८] हयग्रीव,[२९] दत्तात्रेय[३०] और गरुड[३१]—ये अथर्ववेदके इकतीस उपनिषद् हैं; इनका शान्तिमन्त्र है '**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम०**' इत्यादि॥ ५५॥

जो लोग मुक्तिके अभिलाषी हैं, जो नित्यानित्यवस्तुविवेक, इस लोक एवं परलोकके भोगोंसे वैराग्य, शम-दम आदि षट्सम्पत्ति तथा मोक्षाभिलाषरूप साधनचतुष्टयसे सम्पन्न हैं, वे श्रद्धावान् पुरुष सत्कुलमें उत्पन्न, श्रोत्रिय (वेदज्ञानसम्पन्न), शास्त्रानुरागी, गुणवान्, सरलहृदय, समस्त प्राणियोंकी भलाईमें रत तथा दयाके समुद्र सद्गुरुके निकट विधिपूर्वक भेंट लेकर जाते हैं और उनसे १०८ उपनिषदोंको विधिपूर्वक पढ़कर निरन्तर श्रवण-मनन-निदिध्यासनका अभ्यास करते हैं। फिर प्रारब्धका क्षय होनेपर जब उनके स्थूल, सूक्ष्म तथा आतिवाहिक—तीनों शरीर नष्ट हो जाते हैं, तब वे उपाधिमुक्त घटाकाशके समान परिपूर्णताको प्राप्त करते हैं अर्थात् ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। यही विदेहमुक्ति कहलाती है, इसीको कैवल्यमुक्ति भी कहते हैं। अतएव ब्रह्मलोकमें रहनेवाले भी ब्रह्माजीके मुखसे वेदान्तका श्रवण-मनन-निदिध्यासन करके उन्हींके साथ कैवल्यको प्राप्त करते हैं। अतः सबके लिये केवल ज्ञानद्वारा ही कैवल्यमुक्ति कही गयी है—कर्मयोग, सांख्ययोग तथा उपासनादिके द्वारा नहीं। यह उपनिषद् है॥ ५६॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त॥ १॥

ॐ

द्वितीय अध्याय

जीवन्मुक्ति एवं विदेहमुक्तिका स्वरूप, उनके होनेमें प्रमाण, उनकी सिद्धिका उपाय तथा प्रयोजन

तत्पश्चात् श्रीहनूमान्जीने श्रीरामजीसे पूछा—'भगवन्! जीवन्मुक्ति क्या है, विदेहमुक्ति क्या है और इनके होनेमें प्रमाण क्या है? तथा उनकी सिद्धि कैसे होती है और उस सिद्धिका प्रयोजन क्या है?'॥ १॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—"हनूमन्! जीवको 'मैं भोक्ता हूँ, मैं कर्ता हूँ, मैं सुखी हूँ और मैं दुःखी हूँ'— इत्यादि जो ज्ञान होता है, वह चित्तका धर्म है। यही ज्ञान क्लेशरूप होनेके कारण उसके लिये बन्धनका कारण हो जाता है। इस प्रकारके ज्ञानका निरोध ही जीवन्मुक्ति है। घटरूप उपाधिसे मुक्त घटाकाशकी भाँति प्रारब्धरूप उपाधिके नष्ट होनेपर यह जीव विदेहमुक्त हो जाता है। जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिके होनेमें अष्टोत्तरशत-उपनिषद् ही प्रमाण हैं। कर्तापन और भोक्तापन आदि दुःखोंकी निवृत्तिके द्वारा नित्यानन्दकी प्राप्ति ही इनका प्रयोजन है। वह आनन्द-प्राप्ति पुरुषके प्रयत्नसे—पुरुषार्थसे सिद्ध होती है। जैसे पुत्रेष्टि-यज्ञके द्वारा पुत्रकी, वाणिज्य-व्यापारके द्वारा धनकी एवं ज्योतिष्टोम-यज्ञके द्वारा स्वर्गकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार पुरुषके प्रयत्नसे होनेवाले वेदान्तके श्रवण-मनन और निदिध्यासनसे उत्पन्न हुई समाधिसे जीवन्मुक्ति आदिकी सिद्धि होती है और वह सारी वासनाओंके नाश होनेपर प्राप्त होती है"॥ २॥

"पुरुषका प्रयत्न या पुरुषार्थ दो प्रकारका होता है— शास्त्रविरुद्ध और शास्त्रानुकूल। उनमें शास्त्रविरुद्ध पुरुषार्थ अनर्थका कारण होता है और शास्त्रानुकूल पुरुषार्थ परमार्थको सिद्ध करनेवाला होता है। लोक-वासना, शास्त्र-वासना तथा देह-वासनाके कारण प्राणीको यथार्थज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती अर्थात् ये तीन प्रकारकी वासनाएँ ही ज्ञानकी प्राप्तिमें बाधक हैं। वासनाएँ पुनः दो प्रकारकी होती हैं— शुभ और अशुभ। शुभ वासनाओंके द्वारा, हनूमन्! यदि तुम ज्ञानका अनुशीलन करते हो तो क्रमशः उसके द्वारा मेरे पदको प्राप्त करोगे और यदि अशुभ भावोंसे युक्त रहते हो तो वे तुम्हें महान् संकटमें डाल देंगे। कपीश्वर! पूर्वके संस्कारोंको तुम्हें यत्नपूर्वक जीतना चाहिये। शुभाशुभ मार्गोंसे बहती हुई वासनारूपी नदीको अपने पुरुषार्थके द्वारा शुभ मार्गमें लगाना चाहिये। अशुभ मार्गोंमें जाते हुए वासनाप्रवाहको शुभ मार्गोंमें उतारना चाहिये; क्योंकि मनका यह स्वभाव है कि अशुभसे हटानेपर वह शुभकी ओर जाता है और शुभसे हटाये जानेपर अशुभमें प्रवृत्त होता है। मनुष्यको चाहिये कि पुरुषार्थके द्वारा यत्नपूर्वक चित्तरूपी बालकको फुसलाकर—थपथपाकर शुभमें ही लगाये। अभ्यासके द्वारा जब तुम्हारी दोनों प्रकारकी वासनाएँ जल्दी ही क्षीण होने लगें, तब शत्रुओंका मर्दन करनेवाले हनूमन्! तुम जान लेना कि अभ्यास परिपक्वताको प्राप्त हो गया। पवनकुमार! जहाँ वासनाके अस्तित्वका संदेह भी हो, वहाँ शुभ वासनाओंमें ही बारम्बार चित्तको लगाये। शुभ वासनाओंकी वृद्धि होनेपर कभी दोष नहीं उत्पन्न हो सकता"॥ ३—१०॥

"महामति हनूमन्! वासनाक्षय, विज्ञान और मनोनाश—इन तीनोंका एक साथ चिरकालतक अभ्यास करनेपर ये फल प्रदान करते हैं। जबतक इन तीनोंका बारम्बार एक साथ अभ्यास न किया जाय, तबतक सैकड़ों वर्ष बीतनेपर भी कैवल्य-पदकी प्राप्ति नहीं होती। यदि अलग-अलग इनका चिरकालतक भी खूब अभ्यास किया जाय तो, जिस प्रकार टुकड़े-टुकड़े करके जपे हुए मन्त्र सिद्ध नहीं होते, उसी प्रकार इनसे सिद्धिकी प्राप्ति नहीं होती। यदि इन तीनोंका चिरकालतक अभ्यास किया जाय तो हृदयकी दृढ़ ग्रन्थियाँ भी निःसंदेह उसी प्रकार नष्ट हो जाती हैं, जैसे कमलकी नालको तोड़नेपर उसके रेशे टूट जाते हैं। जिस झूठी संसार-वासनाका सैकड़ों जन्मोंसे अभ्यास हो रहा है, वह चिरकालतक साधना किये बिना कदापि क्षीण नहीं होती। इसलिये, प्यारे हनूमन्! पुरुषार्थके द्वारा प्रयत्न करते हुए विवेकपूर्वक भोगकी इच्छाओंको दूरसे ही नमस्कार करके इन तीनोंका सम्यक्रूपसे अवलम्बन करो"॥ ११—१६॥

"वासनासे युक्त मनको ज्ञानियोंने बद्ध बतलाया है और जो मन वासनासे सम्यक्तया मुक्त हो गया है,

वह मुक्त कहलाता है। महाकपि! मनको वासनाविहीन स्थितिमें शीघ्र ले आओ। भलीभाँति विचार करनेसे और सत्यके अभ्याससे वासनाओंका नाश हो जाता है। वासनाओंके नाशसे चित्त उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जैसे तेलके समाप्त हो जानेपर दीपक बुझ जाता है। वासनाओंका भलीभाँति त्याग करके मुझ चैतन्यस्वरूपमें जो निवात दीपशिखाके समान निश्चल होकर स्थित रहता है, वह मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपको एकीभावसे प्राप्त होता है। समाधि अथवा कर्मानुष्ठान वह करे या न करे। जिसके हृदयमें वासनाका सर्वथा अभाव हो गया है, वही मुक्त है, वही उत्तमाशय है'' ॥ १७—२० ॥

''जिसके मनसे वासनाएँ दूर हो गयी हैं, उसे न नैष्कर्म्यसे—कर्मोंके त्यागसे मतलब है और न कर्मानुष्ठानसे। उसे समाधान अर्थात् षट्सम्पत्ति और जपकी भी आवश्यकता नहीं है। सारी वासनाओंका त्याग करके मनका मौन धारण करनेके अतिरिक्त कोई दूसरा परम पद नहीं है। किसी प्रकारकी प्रत्यक्ष वासना न होनेपर भी चक्षु आदि इन्द्रियाँ जो स्वतः अपने-अपने बाह्य विषयोंमें प्रवृत्त होती हैं, इसमें कोई-न-कोई सूक्ष्म वासना ही कारण है। अनायास सामने आये हुए दृश्य विषयोंमें जैसे चक्षु-इन्द्रियकी बारम्बार प्रवृत्ति रागरहित ही होती है, उसी प्रकार धीर पुरुष कार्योंमें अनासक्तभावसे ही प्रवृत्त होते हैं। पवनतनय! जो सत्ता-बुद्धिसे प्रकट होती है और उसीके अनुकूल होती है तथा जिसमें चित्तका उदय और लय भी होता है, मुनिलोग उसी वृत्तिको वासनाके नामसे पुकारते हैं। चिर-परिचित पदार्थोंके अनन्य चिन्तनके द्वारा जो चित्तमें अत्यन्त चञ्चलता उत्पन्न हो जाती है, वही चित्त-चाञ्चल्य जन्म, जरा और मृत्युका एकमात्र कारण होता है। वासनाके कारण प्राणोंमें स्पन्दन होता है और उस स्पन्दनसे पुनः वासनाकी उत्पत्ति होती है; इस प्रकार चित्तरूपी बीजमें अङ्कुर लगते रहते हैं'' ॥ २१—२६ ॥

''चित्तरूपी वृक्षके दो बीज हैं—प्राण-स्पन्दन (प्राणोंकी गति) और वासना। इन दोनोंमेंसे एकके भी क्षीण होनेसे दोनों नष्ट हो जाते हैं। अनासक्त होकर व्यवहार करनेसे, संसारका चिन्तन छोड़ देनेसे और शरीरकी विनश्वरताका दर्शन करते रहनेसे वासना उत्पन्न नहीं होती और वासनाका भलीभाँति त्याग हो जानेपर चित्त अचित्तताको प्राप्त होता है अर्थात् उसकी वासनात्मिका प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। वासनाके नष्ट हो जानेपर जब मन मनन करना छोड़ देता है, तब मनके निराकृत होनेपर परम शान्तिप्रद विवेककी उत्पत्ति होती है। जबतक तुम्हारे अंदर ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो जाती, तबतक तुम्हें परमपद अज्ञात है, तबतक गुरु तथा शास्त्र-प्रमाणके द्वारा निर्णीत मार्गका आचरण करो। तदनन्तर कषायोंका परिपाक होनेपर जब निश्चर्यपूर्वक तुम्हें तत्त्वका ज्ञान हो जाय, तब तुम्हें निश्चिन्त होकर समस्त शुभ वासनाओंका भी त्याग कर देना चाहिये'' ॥ २७—३१ ॥

''चित्तनाश दो प्रकारका होता है—सरूप और अरूप। जीवन्मुक्तका चित्तनाश सरूप होता है और विदेहमुक्तका अरूप होता है अर्थात् जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूपसे रहता तो है, पर वह अचित्त हुआ रहता है; विदेहमुक्त होनेपर उसका स्वरूपतः नाश हो जाता है। पवनसुत! अब एकाग्रचित्तसे मनोनाशके विषयमें सुनो। जब तुम्हारा मन चित्तनाशकी स्थितिको प्राप्त हो जायगा अर्थात् उसकी अनुसंधानात्मिका वृत्ति शान्त हो जायगी, तब मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा प्रभृति गुणोंसे युक्त होकर वह परमशान्तिको प्राप्त कर लेगा—इसमें कोई संशय नहीं है। जीवन्मुक्तका मन आवागमनसे मुक्त हो जाता है, अतः उसका वह मनोनाश सरूप कहलाता है। विदेह-मुक्ति मिल जानेपर जो मनोनाश होता है, वह अरूप कहलाता है। अतएव सहस्रों अङ्कुर, त्वचा, पत्ते, शाखा एवं फल-फूलसे युक्त इस संसारवृक्षका यह मन ही मूल है—यह निश्चित हुआ और वह मन सङ्कल्परूप है। सङ्कल्पको निवृत्त करके उस मनस्तत्त्वको सुखा डालो, जिससे यह संसारवृक्ष भी नीरस होकर सूख जाय। अपने मनके निग्रहका एक ही उपाय है; वह है यह निश्चय करना कि मनका अभ्युदय—उसका स्फीत होना ही उसका विनाश—पतन है और उसके नाशमें ही उसका महान् अभ्युदय—उसकी उन्नति है। ज्ञानसे मनोनाश होता है। अज्ञानीका मन उसके लिये शृङ्खलारूप—बन्धनका कारण होता है। रात्रिमें वेतालोंकी भाँति हृदयमें वासनाओंका वेग तभीतक रहता है, जबतक एक तत्त्वके दृढ़ अभ्याससे मनपर विजय नहीं कर ली जाती। जिनका चित्त और

अभिमान क्षीण हो गये हैं और इन्द्रियरूपी शत्रु वशमें हो गये हैं, उनकी भोगवासनाएँ उसी प्रकार क्षीण हो जाती हैं, जैसे हेमन्त-ऋतुके आनेपर कमलिनी—कमलका पौधा स्वयमेव नष्ट हो जाता है। हाथसे हाथको मलकर, दाँतसे दाँत पीसकर तथा अङ्गोंको अङ्गोंसे दबाकर—अर्थात् अपनी पूरी शक्ति लगाकर पहले अपने मनको जीतना चाहिये। बारम्बार एकाग्रचित्त होकर बैठने तथा सद्युक्तिके द्वारा आत्म-चिन्तन करनेके अतिरिक्त मनको जीतनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है''॥ ३२—४१॥

''जिस प्रकार मदमत्त हाथी अङ्कुशके बिना वशमें नहीं आता, उसी प्रकार चित्तको वशमें करनेके लिये अध्यात्म-विद्याका ज्ञान, सत्सङ्गति, वासनाओंका भलीभाँति परित्याग तथा प्राणवायुका निरोध अर्थात् प्राणायाम—ये प्रबल उपाय हैं। इन श्रेष्ठ युक्तियोंके रहते हुए जो हठपूर्वक चित्तको निरुद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं, वे दीपकको छोड़कर अन्धकारमें भटकते हैं। जो मूढ़ पुरुष हठसे चित्तको वशमें करनेका उद्योग करते हैं, वे उन्मत्त हाथीको कमल-नालके तन्तुओंसे बाँधनेकी चेष्टा करते हैं। वृत्तिरूप लताओंके आश्रयभूत चित्तरूपी वृक्षके दो बीज हैं—एक है प्राणोंका स्पन्दन (गति), दूसरी दृढ़ भावना। प्राण-वायुके सञ्चालनसे घट-घट-व्यापक संवित्—समष्टि-चेतना चलायमान हो उठती है। चित्तकी एकाग्रतासे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उससे मुक्तिलाभ होता है। अतएव चित्तकी एकाग्रताके साधनोंमें ध्यानकी यथोचित विधि बतलायी जाती है—॥ ४२—४७॥

''चित्त सर्वथा विकारहीन न हो तो भी यशके आविर्भाव और अरिष्टके तिरोभावके क्रमसे केवल चैतन्य—चिदानन्दस्वरूप परब्रह्मका चिन्तन करो। जिस क्षण चित्त चिदानन्दमें आरूढ़ होता है, वह यशकी स्थिति है और जिस क्षण उससे अलग होता है, वह अरिष्टकी स्थिति है। चित्तकी चाञ्चल्यके कारण यह स्वाभाविक स्थिति होती है, अतएव अरिष्टकी स्थितिसे पुनः-पुनः यशकी स्थितिमें चित्तको स्थापितकर परब्रह्मके चिन्तनमें लगो। अपानवायुके भीतर रोक दिये जानेपर जबतक हृदयमें प्राणवायुका उदय नहीं होता, तबतक वह कुम्भकावस्था रहती है, जिसका योगीलोग अनुभव करते हैं और प्राण-वायुके बाहर रोक दिये जानेपर जबतक अपान-वायुका उदय नहीं होता, तबतक जो पूर्ण समावस्था रहती है, उसे बाह्य कुम्भक कहते हैं''॥ ४८—५०॥

''चिरकालतक ध्यानका अभ्यास करते रहनेपर जब अहङ्कार विलुप्त हो जाता है और मनोवृत्ति ब्रह्माकारमें प्रवाहित होने लगती है, तब उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। जब चित्तकी सारी वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं, उस समय परमानन्द प्रदान करनेवाली असम्प्रज्ञात नामकी समाधि होती है, जो योगियोंको प्रिय है। इस समाधिकी अवस्थामें कुछ भी भान नहीं होता। हो कैसे; उस स्थितिमें मन और बुद्धिका अस्तित्वतक नहीं रहता, केवल चित्स्वरूपकी अवस्थिति होती है। इस समाधिमें चित्त निरालम्ब होकर कैवल्य-स्थितिमें रहता है; मुनिलोग इस समाधिकी भावना करते हैं। इस समाधिमें ऊपर, नीचे और बीचमें—सर्वत्र शिवस्वरूप पूर्ण ब्रह्म ही अनुभूत होते हैं; यह समाधि परमार्थ अर्थात् मोक्षस्वरूप है तथा साक्षात् ब्रह्माके मुखसे उपदिष्ट हुई है॥ ५१—५४॥

''दृढ़ भावनाके द्वारा पूर्वापरका विचार छोड़कर चित्त जो पदार्थके स्वरूपको ग्रहण करता है, उस चित्तविकारको वासना कहते हैं। कपिश्रेष्ठ! आत्मा चित्तके तीव्र संवेगसे जैसी भावना करता है, इतर वासनाओंसे मुक्त होकर वह शीघ्र वैसा ही बन जाता है। इस प्रकारका पुरुष वासनाके वशीभूत होकर जो कुछ देखता है, उसीको सद्वस्तु—यथार्थ मानकर मोहको प्राप्त होता है। वासनाके वेगकी विभिन्नताके कारण चित्त अपने वासनात्मक स्वरूपको नहीं छोड़ता। एक वासनाके छोड़ते-छोड़ते दूसरी वासनामें रमने लगता है। जिस प्रकार नशेके कारण पुरुषकी विवेकबुद्धि नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार वह दुर्बुद्धि भ्रान्त होकर सब कुछ देखता है। वासना दो प्रकारकी होती है—शुद्ध और मलिन। मलिन वासना आवागमनमें डालती है और शुद्ध वासना मनुष्यको जन्म-मृत्युसे छुड़ाती है। ज्ञानीजन कहते हैं कि मलिन वासना निबिड़ अहङ्कार और घन अज्ञानस्वरूप होती है, वह पुनर्जन्म प्रदान करती है॥ ५५—६०॥

''जिस प्रकार बीजके अच्छी प्रकार भुन जानेपर उससे अङ्कुर नहीं उत्पन्न होता, उसी प्रकार संसार-वासनाके नष्ट हो जानेपर पुनर्जन्म नहीं होता। अतएव दग्ध-बीजके समान स्थिति होनी चाहिये। वायुनन्दन! चबाये हुएको चबानेके समान नाना शास्त्रोंकी व्यर्थ आलोचनासे क्या लाभ; प्रयत्न होना चाहिये भीतरी प्रकाशको खोजनेके लिये। कपिशार्दूल! दर्शन और

अदर्शन अर्थात् सत्-ख्याति और असत्-ख्याति दोनोंको छोड़कर जो स्वयं कैवल्यरूपमें स्थित रहता है, वह ब्रह्मविद् नहीं, स्वयं ब्रह्मस्वरूप ही है। चारों वेदोंका और अनेकों शास्त्रोंका अध्ययन करके भी जो ब्रह्मतत्त्वको नहीं जानता, वह परमानन्दसे उसी प्रकार वञ्चित रहता है, जैसे कलछुल भोजनके पदार्थोंमें रहती हुई भी उनके रसको नहीं जानती। जिसका अपने शरीरकी अपवित्र गन्धको प्रत्यक्ष करके भी उससे विराग नहीं होता, उसको विराग पैदा करनेवाला दूसरा कौन-सा उपदेश दिया जा सकता है॥ ६१—६४॥

''शरीर अत्यन्त मलयुक्त है और आत्मा अत्यन्त निर्मल है; दोनोंके भेदको जानकर किसकी शुचिताका उपदेश किया जाय। जो वासनासे बँधा है, वही बद्ध है और वासनाओंका नाश ही मोक्ष है। अतएव वासनाओंका सम्यक्रूपसे परित्याग करके मोक्ष-प्राप्तिकी वासनाका भी त्याग करो। पहले मानसी वासनाओंका त्याग करके विषय-वासनाओंका भी त्याग करो और मोक्षादिकी शुद्ध—निर्दोष वासनाओंको ग्रहण करो। इसके बाद उनको भी छोड़कर अथवा उन भव्य वासनाओंको व्यवहारमें रखते हुए भी भीतरसे शान्त अर्थात् सब प्रकारकी वासनाओंसे मुक्त रहकर सबके प्रति समान स्नेह रखते हुए एकमात्र चित्स्वरूपमें अपनी वासना लगाओ। मारुति! फिर उस चिद्वासनाको भी मन और बुद्धिके साथ परित्याग करके अन्ततोगत्वा तुम मुझमें पूर्णतया समाहित हो जाओ। जो शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, रसरहित और गन्धरहित है, जो कभी विकारको नहीं प्राप्त होता, जिसका न कोई नाम है और न कोई गोत्र है तथा जो सब प्रकारके दुःखोंको हरनेवाला है—पवनतनय! इस प्रकारके मेरे स्वरूपका तुम भजन करो॥ ६५—७०॥

''हनूमन्! जो साक्षिस्वरूप है, आकाशके समान अनन्त है, जिसे एक बार जान लेनेपर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता; जो अजन्मा, एक—अद्वितीय, निर्लेप, सर्वव्यापी एवं सर्वश्रेष्ठ है; जो अकार-उकार-मकाररूप तीन कलाओंसे युक्त तथा सम्पूर्ण कलाओंसे विमुक्त अद्वय-तत्त्व है, वह ओङ्काररूप अक्षर—अविनाशी ब्रह्म मैं ही हूँ। मैं द्रष्टा हूँ, शुद्धस्वरूप हूँ, कभी विकारको प्राप्त नहीं होता और मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, जो मेरा विषय बने अर्थात् मेरा द्रष्टापन भी कहनेके लिये ही है। मैं आगे-पीछे, ऊपर-नीचे—सर्वत्र परिपूर्ण हूँ। मैं भूमा हूँ, मुझमें किसी प्रकारकी कमी नहीं है। हे हनूमन्! तुम मेरे इस स्वरूपका चिन्तन करो। मैं अज हूँ, अमर हूँ, अजर हूँ, अमृत हूँ, स्वयम्प्रकाश हूँ, सर्वव्यापी हूँ, अव्यय—अविनाशी हूँ, मेरा कोई कारण नहीं—मैं स्वयम्भू हूँ, समस्त कार्य-कलापसे परे मैं शुद्धस्वरूप हूँ, नित्यतृप्त हूँ—इस प्रकार तुम चिन्तन करो। इस प्रकार चिन्तन करते-करते जब कालवश शरीरपात होगा, तब वायुके स्पन्दनके समान तुम जीवन्मुक्त-पदका भी परित्याग करके निर्वाण-मुक्ति—विदेह-मुक्तिकी अवस्थामें पहुँच जाओगे। यही बात ऋचामें भी कही गयी है—'जो आकाशमें तेजोमय सूर्य-मण्डलकी भाँति, परमव्योममें चिन्मय प्रकाशद्वारा सब ओर व्याप्त है, भगवान् विष्णुके उस परमधामको विद्वान् उपासक सदा ही देखते हैं। साधनामें सदा जाग्रत् रहनेवाले निष्काम उपासक ब्राह्मण वहाँ पहुँचकर उस परमधामको और भी उद्दीप्त किये रहते हैं, जिसे विष्णुका परमपद कहते हैं। वह परमपद निष्काम उपासकको प्राप्त होता है।' जो इस प्रकार जानता है, वह उक्त फलका भागी होता है। यह महा-उपनिषद् है''॥ ७१—७६॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥

॥ शुक्लयजुर्वेदीय मुक्तिकोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!